

पुस्तक परिचय/ समीक्षा

“ये इश्क है...”

हाल ही में वन्दना यादव द्वारा सृजित कव्य संग्रह “ये इश्क है” प्रकाशित हुआ। दिल्ली के अदिक पब्लिकेशन ने इसे सुंदर किताबी जामा पहनाया है। जितना लुभावन शीर्षक है, उतना ही आकर्षक मुखपृष्ठ भी है जो सिरजना कौर के सिद्ध हाथों से मुखरित हुआ है। सबसे पहले तीनों का हार्दिक अभिनंदन।

अपनी बात को खत्म करते हुए वन्दना जी अंतिम पंक्तियों में लिखती हैं- “ये इश्क है”-अब आपका हुआ। अर्थात् पाठकों को पुस्तक के इश्क में विहंगम करने के लिए समर्पित करती हैं। भूमिका के तौर पर वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीशंकर बाजपेयी, नरेंद्र पुंडरीक और कवयित्री किरण यादव ने अपना स्नेह बरसाया है। अब बारी पाठकों की है।

“ये इश्क है” शीर्षक पढ़ते ही स्वाभाविक रूप से कई तरह की भाव-भावनाएं मन में तरंगित होने लगती हैं, जिसको कसौटी लौकिक और अलौकिक हो सकती है। जी हां, इश्क की इन्हीं लहरों पर सवार होकर १३ कविताएं अपनी रुझानी तान छेड़ती हैं। कई रचनाएं पहली नज़र में सतही और निरास लगती हैं मगर अंतर्भूत से देखने पर प्रेम की पराकाष्ठा को छूती नज़र आती हैं। ये इश्क उस बृहत प्रेम का प्रतीक है, जिसे शब्दों और सीमाओं में बांधना कठिन है। ये क्षणिक भाव- भावनाओं और शृंगार रस से परे वो जड़ें हैं जो बहुत गहराई तक जाती हैं और इबादत की मंजिल खड़ी करती हैं। इश्क अर्थात् प्यार, मोहब्बत जो अपने आपमें बढ़ा ही व्यापक और गहन अर्थ समेटे हुए है।

प्रेम जीवन का अत्यंत ही महत्वपूर्ण घटक है। इसे पाने के लिए लोग सकारात्मकता एवं नकारात्मकता की कई हद्दें पार कर जाते हैं। इसे व्यक्त करने की सबकी अपनी-अपनी शैली होती है। अबसर लोग इसकी अभिव्यक्ति में गज़ल और शायरी विधा का प्रयोग करते हैं। मगर वन्दना जी इसे मुक्त छंद में कलात्मक-सौंदर्यबोध के साथ प्रस्तुत किया है जिसे अनुठा प्रयोग भी कह सकते हैं। कवयित्री इश्क में है। उसका इश्क उथला पानी नहीं है बल्कि समुंदर की गहराई है। वह वेलेंटाइन वाली बात कहीं नहीं करती, बल्कि संस्कृति और प्रकृति के सहारे सृष्टियाना अंदाज में बड़ी सादगी से दिल, दुनिया, जहाँ की बात करती है। क्योंकि उसे इश्क है-बचपन की गलियारों से, गाँव-घर आँगन चूल्हे, खेत-खलिहानों से, प्रकृति, पहाड़ों-पगडंडियों से, अपने घर-परिवार, माता-पिता, बेटियों और पति से, पुरानी चिड़ियों, मिश्रों और सहोदरियों के रस रंग से, पठन-पाठन और शब्दों के सृजन से। उन तमाम मौखी यादों और उनके इश्क के गिरफ्त से वहरिहा नहीं होना चाहती। बनिस्पद पार कर लेना चाहती है भवसागर इन्हीं यादों के सहारे। बानगी के तौर पर ये पंक्तियाँ देखें- “एक दिन खाली बैठे, जब जी रही थी बीते लम्हे, एक मुस्कान सी फैल गई चेहरे पर, उन पलों में, पूछने पर मेरे अपनों के-क्या हुआ?, जवाब था-कुछ नहीं। मैं मुस्कुरा देती हूँ, इस कुछ नहीं सी मुस्कुराहट में, दफ़न हैं ना जाने कितने रिश्ते।” ये तेवर हैं इन कविताओं के।

इश्क की ये वो शक्तियाँ हैं जो कवयित्री को जीवन में आगे बढ़ने का हौसला देती हैं और दुनिया से बाझबर होते हुए भी बेझबर रहने का हुनर सिखाती हैं। बीते लम्हों की कसक भले साथ है पर उन्हें याद करते हुए वह जीने का संकल भी प्राप्त करती हैं कुछ पंक्तियाँ देखें- ‘मन मयूर इनझना उठा है मदमस्त मस्ताना सा,

इठलाया बीराया-सा, बावरा भोज-भोज धिरकने लगा है, इस बार आशाओं की चादर में, सपनों की गागर में, डूबने लगा है मन मेरा, सपनों-अपनों की चाह में।”

प्रेम व्यक्त करने की अपनी एक गरिमा होती है, एक पर्दादारी होती है, जिसमें शिद्द की गहराई और असीम ऊँचाई होती है। पहाड़ को प्रतीक बनाकर कवयित्री लिखती है- “इस बार जब मैं मिलने गई थी उससे, वह पूछता रहा हाल, बार-बार! कैसे बिताई बरसातें? सौधी झुराबू जब आई माटी की, जब बहो नदियाँ में पानी और धिरी धटा सुहानी, जब चहवाए पंछी, कहीं कूक सुनी कोयल की, तब, सच

कहना क्यूँ भोग गई थी पलकें तुम्हारी?” इस तरह की और भी कई कविताएँ हैं जो दिल को अंदर तक छू लेती हैं। इतना आसान नहीं होता है प्रेम के आसमान को छू लेना! संग्रह की कुछ कविताएँ हमें अपने बीते दिनों की यादों में सराबोर कर देती हैं। अपना बचपन किसे प्यारा नहीं लगता? किसे अपनी बचकानी हरकतों से इश्क नहीं होता? हम कितने भी बड़े क्यों ना हो जाएँ लेकिन अपने भीतर के बच्चे को जो ज़िंदा रखता है, वही खुशदिल इंसान होता है। हंसते, खिलखिलाते, चहकते गुलाब-सा होते हैं ऐसे इंसान। कवयित्री को अपने बचपन के दिनों से हृद से ज्यादा इश्क करती है इसलिए ‘छोटा-सा बचपन’ जो कि संग्रह की बड़ी ही प्यारी रचना है, उसमें सुहानी यादों का जिक्र करते हुए लिखती है-मेरे अंदर आज भी एक छोटा-सा बच्चा है, वो झिझकता है, पिछड़ता है, माँ का आंचल छूट जाने से डरता है, सरारतें करता है, आग में कूदता है, यादियों में चलता है, बहता है

नदी की धारा में, पानी में कंकड़ फेंकता है..., सुबह से शाम और शाम से सुबह तक, सपनों में रहता है, मेरे अंदर आज भी..., इस इश्क के आगे दुनिया का हर नशा फीका लगता है।

इश्क में हरकर जीतना ही सफलता का फलसाफ़ा होता है। “जायका” कविता में कवयित्री लिखती है-उस रोज़ जब, चूल्हे पर सिक रही थी रोटी, और मैं, जल्दबाजी में छोड़ आई थी उसे बिना चखे, उसका जायका, आज भी ताज़ा है जुबान पर, उतना ही, जितनी तबे पर सिकती, कंदों पर फूलती, रोटी थी, उस दिन। कुछ नहीं बोलती है यह कविता, पर अपने भीतर एक गहरा अर्थ लिए चलती है। प्रेम पाना नहीं बल्कि खोना ही उसकी नियति है। इसमें मंजिल की बजाय खुरदुरे रास्तों पर चलना ही बड़ा सुखदायी होता है। बड़े-बड़े शायरों ने प्रेम को अपनी जुबान दी है। वन्दना जी की अपनी विशेष बोली-भाषा है।

इस तरह संग्रह की कई कविताएँ हैं जो इश्क की रवानगी पेश करती हैं। बानगी के तौर पर संग्रह की-“यूँ ही सा खयाल, दरवाजा और इन्तिज़ार, पगडंडी, दोपहर बाद की धूप, एक कतरा, हम-तुम, मन मेरा भीगने लगा है, पंखुड़ियाँ, चाय का प्याला, सीढ़ियाँ, लम्हें, बंद दरवाजों वाला घर” आदि को पढ़ा जा सकता है। शाम होने लगी है-संग्रह की अंतिम और बड़ी कविता है जो भावुक कर देती है।

इश्क रूपी मयावी जाल को बेहद ही सरल और सहज शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, इसे संग्रह को पढ़ते हुए महसूस किया जा सकता है। ये कविताएँ अपने भीतर कई प्रतीकों और भाव सौंदर्यों को समेटे हुए हैं। इन्हें समझने के लिए पाठकों को अपने भीतर उतरकर गहराई में गोते लगाना होगा। तब किसी को भी इस पुस्तक से इश्क हो जाएगा, इसमें कोई दो राय नहीं है।

समीक्षक

डॉ. रमेश यादव, मुंबई

